# गरम मसाले के अनोखे जीव

डॉ. किशोर पंवार

आगे बढ़ना, और मुश्किलों पर विजय पाना अकेले के बस का न हो तो किसी का साथ ढूंढ लेना समझदारी है। जीवों की इस रंग-बिरंगी, रोचक, रोमांचक दुनिया में कई उदाहरण हैं जहां एक जीव ने दूसरे से कहा है - साथी हाथ बढ़ाना, एक अकेला थक जाएगा मिलकर बोझ उठाना। इस दुनिया में बड़े-बड़े जीवों ने सूक्ष्म जीवों का दामन थाम कर अपनी जीवन नैया पार लगाई है।

कई बैक्टीरिया एवं फफूंदों ने अक्रिय, अनुपलब्ध नाइट्रोजन को उपयोगी नाइट्रेट और नाइट्राइट में बदलकर उपयोगी रूप में परोसा है। पेड़-पौधों एवं इन सूक्ष्म जीवों का यह सम्बंध हमें ऊपर से नहीं दिखता। इन पौधों की जड़ों को खोदकर देखने पर पता चलता है कि इनकी जड़ों पर जगह-जगह कुछ विशिष्ट रचनाएं लगी हैं। यही हैं जड़ ग्रंथियां जिनमें *रायज़ोबियम* नाम के बैक्टीरिया रहते हैं जो पौधों को नाइट्रेट और नाइट्राइट उपलब्ध कराते हैं।

रेगिस्तान की तपती चट्टानों पर, आर्क्टिक क्षेत्र की बर्फ-सी ठंड शिलाओं पर, जहां मिट्टी का नामों निशान नहीं है, जहां पानी की एक बूंद भी नहीं है, वहां जीवन की कल्पना कर पाना ही कठिन लगता है, वहां भी एक-दूसरे का साथ लेकर कठिनाई को पार पाने का नाम है 'पत्थरफूल'। इनसे मेरी करीबी मुलाकात हाल ही में जून माह में एकलव्य द्वारा होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इंदौर में आयोजित एक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशाला के दौरान जीवों के वर्गीकरण का अध्ययन कराते समय हुई।

पत्थरफूल को वैज्ञानिक भाषा में लायकेन कहते हैं। इन्हें यह नाम वनस्पति शास्त्र के पितामह थियोफ्रॉस्टस (371-284 ईसा पूर्व) ने दिया था। पत्थरफूल दरअसल जंगलों एवं रेगिस्तान की नग्न चट्टानों, पुरानी इमारतों के ऐरनों (पत्थर की बड़ी-बड़ी ईंटें) तथा पेड़ों की छालों पर उगी रंग-बिरंगी रचनाएं हैं। ये दूर से ऐसी दिखती है जैसे पत्थर या छाल पर हरे-पीले, नारंगी, लाल, काले-भूरे फूल चिपका दिए हों। यह किराने की दुकानों पर खड़े गरम मसाले छबीला या छड़ीले के नाम से बिकता है।

ये बिलकुल अनोखे जीव हैं। अनोखे इसलिए क्योंकि ये कोई एक जीव नहीं हैं बल्कि दो विभिन्न प्रकृति के जीवों के मिलने से बनते हैं। इनमें एक है शैवाल अर्थात काई तथा दूसरा है फफूंद (कवक)। इन्हें वनस्पति शास्त्र में शैवाक भी कहा गया है जो शैवाल और कवक से मिलाकर बना है। पत्थरफूल एक तरह की प्राकृतिक सैंडविच है जिसमें ब्रेड की भूमिका में फफूंद है जिसके बीच में मसाला भरा है शैवालों का। ये शैवाल हरे और नीले दोनों प्रकार के होते हैं।

पत्थरफूल की पूरी दुनिया में लगभग 400 वंश और 15,000 से ज़्यादा प्रजातियां मिलती हैं। पत्थरों पर उगने वाले पत्थर फूलों को सेक्सीकोल्स एवं पेड़ों की छालों पर उगने वालों को कार्टीकोल्स कहते है। लायकेन का रूप एवं प्रकार तय करने में कवक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसमें 95 प्रतिशत हिस्सा तो कवक होता है

शैवाल तो महज़ 5 प्रतिशत रहती है। वैसे यह 5 प्रतिशत हिस्सा बहुत अहम है। अगर यह न हो तो लायकेन नहीं बन सकते। क्योंकि इस जीव को भोजन उपलब्ध कराने का काम तो शैवाल का ही है।

पत्थरफूल रंग-रूप और आकार की दृष्टि से तीन तरह के होते हैं। तीनों को आप अपने रसोईघर में गरम मसाले के छबीले में देख सकते हैं।

एक तो हरी-भूरी या काली-भूरी फूलों की पंखुड़ियों की तरह होता है इसे फोलियोज़ यानी पत्तीनुमा नाम दिया गया है। इसी मसाले में कुछ लायकेन लम्बे-भूरे रेशे या पतली-पतली शाखित डोरियों से दिखते हैं। ये फ्रूटीकोज़ (क्षुपिल) लायकेन है। ये अपनी चिपकने वाली रचनाओं से पेड़ की शाखा पर उसकी छाल से चिपके रहते हैं। मसाले में छाल भी देखी जा सकती है।

तीसरा सबसे सरल प्रकार है, जो अक्सर चट्टानों पर या पेड़ की छालों पर एक हरी-भूरी पर्त के रूप में चिपका नज़र आता है। इसको खुरचकर भी निकाला जा सकता है। इसे क्रस्टोज़ कहा जाता है। हिन्दी में इन्हें पर्पटी लायकेन नाम दिया गया है। गरम मसाले के रूप में फोलिओज़ और फ्रूटीकोज़ ही काम में लाए जाते हैं। आर्थिक रूप से भी यही उपयोगी है। किराने की दुकानों पर बिकने वाला अधिकतर पत्थरफूल केरल, आंध्रप्रदेश और असम के जंगलों से आता है।

जैसा कि कहा गया है, ये विचित्र जीव हैं जो दो बिलकुल भिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों के मेल से बने हैं। फफूंद प्रकाश से दूर रहने वाला एक उपभोक्ता है अर्थात उसमें भोजन बनाने की क्षमता नहीं है। यह परपोषी है। दूसरी ओर, शैवाल उत्पादक (स्वपोषी) है। इसके पास भोजन बनाने के लिए ज़रूरी हरा पदार्थ क्लोरोफिल है परन्तु सूर्य की गर्मी और पानी की कमी से निपटने की कोई व्यवस्था नहीं है। कवक के पास क्लोरोफिल तो नहीं है पर गर्मी और सूखे से निपटने की क्षमता है। इन दोनों को मिलाकर एक नया जीव बना है पत्थरफूल जिसमें दोनों के गुणों का फायदा उठाया गया है। शैवाल की मात्रा कम होने और विषम परिस्थितियों के चलते इनकी वृद्धि अत्यन्त धीमी होती है। आर्क्टिक क्षेत्र में कुछ लायकेन की उम्र 1500 वर्ष तक की आंकी गई। ये दुनिया के प्राचीनतम जीवों में से हैं।

अब यह देखें कि ये विचित्र जीव वंश वृद्धि कैसे करते हैं, कैसे दूर-दूर तक फैलते हैं। पुराने लायकेन के टूटने-फूटने से नए शरीर बनते हैं। लायकेन सोरेडिया नाम की रचनाओं से भी प्रजनन करते हैं। ये गोल रचनाएं कुछ शैवाल कोशिकाओं और कवक तंतुओं का एक समूह होती हैं जो अनुकूल स्थान मिलते ही नया लायकेन बना लेती हैं। ये तो लायकेन के प्रजनन के वे तरीके हैं जिनमें शैवाल और कवक दोनों की भागीदारी होती है परन्तु लैंगिक प्रजनन केवल कवक में ही होता हैं। इसमें एस्कोस्पोर और बेसिडिया नाम के बीजाणु बनते हैं। ये कवक बीजाणु जब अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होकर उचित प्रकार के शैवाल के सम्पर्क में आते हैं तो नए पत्थरफूल का निर्माण होता है।

पत्थरफूल का एक महत्व तो हम सभी जानते हैं - खाने को सुगंधित बनाने के लिए गरम मसाले के रूप में। परन्तु ये पत्थरफूल बहुउपयोगी जीव हैं।

लेकेनोरा, एस्पीसिलिया जैसे पत्थरफूल तितलियों, पतंगों के लार्वा, घोंघों और दीमकों का भोजन हैं। टुन्ड्रा में बहुतायत से मिलने वाला पत्थरफूल *क्लेडोनिया रेंजीफेरिना* रेंडियर और केरिबाऊ का खास भोजन है। इसे रेंडियर मॉस के नाम से भी जाना जाता है। खरहे तथा खरगोश *एवरनिया प्रुनास्ट्री* लायकेन बड़े चाव से खाते हैं। पत्थरफूल स्केंडिनेविया, आयरलैंड, इस्राइल, मिस्र और जापान में भी भोजन के लिए उपयोग में लाए जाते हैं।

पत्थरफूल का उपयोग औषधि निर्माण, पूजा सामग्री और शराब बनाने में भी होता है। *रेमेलिना* और *एवरनिया* लायकेन सुंगधित होते हैं अतः धूप, हवन सामग्री एवं साबुन को सुंगधित बनाने में इनका खूब उपयोग किया जाता हैं। *एवरनिया प्रुनास्ट्री* से तो इत्र भी निकलता है।

लायकेन से विभिन्न प्रकार के रोगों जैसे हायड्रोफोबिया, फेफड़ों के रोग, पीलिया तथा बालों का

इलाज होता है। इनके नाम से ही इनके उपयोग का पता चलता है। लगता है कि इनका नामकरण इनसे मिलने वाले लाभों के आधार पर ही किया गया है। *असनिया क्लेडोनिया* से असनिक अम्ल मिलता है जिसमें एंटीबायोटिक गुण है, इससे कटने, जलने और घावों के इलाज के लिए मलहम बनाया जाता है।

*सेट्रेरिया आइसलेंडिका* और *क्लेडोनिया रेंजीफेरा* में लगभग 66 प्रतिशत शर्कराएं होती हैं अतः इनका उपयोग अल्कोहल बनाने में किया जाता है। *रोसेला* और *लेकेनोरा* से आरचिल निकलता है, जो ऊन और रेशम को रंगने के काम आता है। प्रयोगशालाओं में ऊतकों को स्पष्ट रूप से देखने के लिए उपयोग में आने वाला रंजक ऑरसिन इसी से बनता है। अम्ल-क्षार सूचक लिटमस *रोसेला टिंक्टोरिया* से बनता है।

इनका उपयोग हवा में वायु प्रदूषकों, विशेषकर सल्फर डाईऑक्साइड, की मात्रा की जांच करने में भी किया जाता है। हवा में सल्फर डाईऑक्साइड की मात्रा ज़्यादा होने से ये मर जाते है। अतः शहरों और उद्योगों के आसपास इनकी अनुपस्थिति हवा में प्रदूषण की मात्रा बताती है। जैसे-जैसे प्रदूषण बढ़ता है वैसे-वैसे पर्यावरण में इनकी संख्या कम होती जाती है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो. डी.एन. राव ने लायकेन और वायुप्रदूषण पर विश्वस्तरीय शोधकार्य किया है। ***(स्रोत फीचर्स)***